बनारस को जिया था केदारनाथ सिंह ने

समकालीन हिंदी साहित्य में किसी शहर से खुद को जोड़कर इतना अद्‌भुत शायद ही किसी ने लिखा हो, जितना अभी-अभी दिवंगत हुए कवि केदारनाथ सिंह ने बनारस पर लिखा है।

आनंद वर्धन

काशी की उर्वर धरती कवियों एवं साहित्यकारों के लिए अक्षय ऊर्जा का स्रोत रही है। कबीर से लेकर केदारनाथ सिंह तक काशी यानी बनारस ने रचनाकारों और सर्जकों को जीवन रस से आप्लावित किया है। तभी तो इस शहर के बारे में देरों उक्तियां कही जाती रही हैं। रचनाकारों और उनकी रचना को आकार देने में बनारस की हवा और पानी की महती भूमिका है। खुद केदारनाथ सिंह ने कवि त्रिलोचन के बारे में लिखा था कि 'त्रिलोचन के व्यक्तित्व में जितना अवध है, उससे कम बनारस नहीं है। उनके व्यक्तित्व का जो स्थापत्य है, उसको आकार देने में अवध की मिट्टी और बनारस का गंगाजल, दोनों का योगदान है। सच्चाई यह है कि त्रिलोचन ने बनारस को घर की तरह प्यार किया है।'

केदार जी की इस टिप्पणी को खुद उनके ऊपर भी केवल कुछ शब्दों के हेर फेर के साथ लागू किया जा सकता है, बस त्रिलोचन और अवध की जगह केदारनाथ सिंह और बलिया रखकर। केदारनाथ सिंह ने अपनी तरुणाई से युवावस्था तक के कई खूबसूरत साल बनारस में बिताए, इसलिए बनारस उनके व्यक्तित्व में गहराई से रचा-बसा है और गाहे-बगाहे बनारस, लहरतारा, और मैंने गंगा को देखा जैसी कविताओं में अपने पूरे अल्हड़पन के साथ मौजूद है।

चुप्पी और शब्द के रिश्तों को उनकी लहरतारा कविता पढ़ते हुए महसूस किया जा सकता है- *न लहर न तारा/देखा मैंने काशी में/अजब लहरतारा।* इसी कविता में वे अंत में लिखते हैं, *फिर देखी मैंने मूर्तियां उदास/और लगातार गिरता उन पर/ऊबा हुआ जल/अबकी काशी में देखा मैंने/अनंत के बराबर एक छोटा-सा पल/फिर ईश्वर की प्रतीक्षा करते/देखे मैंने कूड़े/गंगा को तापते देखे/कांपते हुए बूढ़े।* यह उदासी, चुप्पी और ऊब वास्तव में बहुत कुछ कहती है।। काशी में बिताया छोटा-सा पल भी अपने अंदर एक ऐसे शाब्दिक अनंत को समेटे हुए है, जो अनिर्वचनीय है, लेकिन उसमें एक गहरी जिजीविषा है। तभी तो केदार की कविता में बूढ़े लोग अविरल बह रही गंगा की उष्मा अपने अंदर भरते जा रहे हैं। वे गंगा में नहाते नहीं, बल्कि उसे तापते हैं, किसी अहर्निश जलते अलाव की तरह। यह कितनी अद्‌भुत बात है कि बनारस जिन चीजों के लिए आज भी मशहूर है, उनमें कूड़ा प्रमुख है, जो अब भी अपने निस्तारण के लिए किसी ईश्वर की प्रतीक्षा कर रहा है।

जब यह कविता लिखी गई, उस समय लोग कमाने के लिए दिल्ली और कोलकाता जाया करते थे और इन दोनों शहरों को जोड़ने वाली सड़क बनारस में लहरतारा से होकर गुजरती थी, *न कमल न नाल/न पुरइन का पत्ता/देखा एक ट्रक/जो अपने ही भार से/चला जा रहा था कलकत्ता।*

केदारनाथ सिंह की कविताएं हमारी अपनी भाषा में हमसे बातें करती चलती हैं। उनका अनुभव संसार गांव से लेकर कस्बाई मानसिकता वाले शहर से होते हुए महानगर तक फैला हुआ है। शहरी परिवेश में रहते हुए भी वह भावनात्मक रूप से गांव से ही जुड़े रहे। बनारस से जुड़ी कविताओं के शब्दों को देखें, तो बोलचाल के वे तमाम शब्द उनमें मिलेंगे, जो गंगा की सीढ़ियों से लेकर लहरतारा तक फैले हैं, जैसे-थपेड़े, डबडब, मल्लाह, राम राम, किरकिराना, सुगबुगाना, निचाट, पुरइन का पत्ता, सई सांझ आदि। केदार जी 17-18 साल तक बनारस में रहे और बनारस को उन्होंने जिया। उन्हें बार-बार गंगा याद आती है, याद आते हैं कबीर और तुलसी। उन्हें गंगा को देखकर साहस मिलता है और ताजगी भी, *मैंने गंगा को देखा/एक लम्बे सफर के बाद/जब मेरी आंखें/कुछ भी देखने को तरस रही थीं/जब मेरे पास कोई काम नहीं था/मैंने गंगा को देखा/प्रचंड लू के थपेड़ों के बाद/जब*

एक शाम/मुझे साहस और ताजगी की/बेहद जरूरत थी/मैंने गंगा को देखा एक रोहू मछली की/डब-डब आंख में/जहां जीने की अपार तरलता थी।

केदारनाथ सिंह ने अपने एक साक्षात्कार में बनारस से भावनात्मक स्तर जुड़ने की बात पर कहा था, एक रचनाकार के रूप में मुझे बनारस ने उस महान साहित्यिक परंपरा की चेतना दी, जिसमें कबीर, तुलसी, भारतेंदु, प्रेमचंद, प्रसाद और आचार्य रामचंद्र शुक्ल जैसे कालजयी साहित्यकार हो चुके थे। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी उसी परंपरा की अंतिम कड़ी थे। यहां पुराने साहित्य के पठन-पाठन के लिए एक अच्छा माहौल था, जिसके चलते मैंने मध्यकालीन कविता को निकट से देखा, जाना और आधुनिक कविता को भी जांचने-परखने की एक दृष्टि पाई। बनारस जो नहीं दे सका, उसकी चर्चा व्यर्थ है, क्योंकि उससे मैंने इतना पाया है कि जो न पा सका, उसका कोई मलाल नहीं! लेकिन इतना यहां और जोड़ दूं कि बनारस में 17-18 वर्ष रहने के बाद भी बनारस को शायद मैं उतना नहीं जान पाया था, जितना बनारस छोड़ देने के बाद! शायद बनारस में रहते हुए, बनारस पर जो कविता मैंने लिखी है, वह नहीं लिख पाता...।